इकाई 7 जन विद्रोह : उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होने वाले विभिन्न कृषक और आदिवासी आंदोलनों के कारण जान सकेंगे
- इन आंदोलनों के लक्षण और विशेषताओं को बता पायेंगे
- इन आंदोलनों के प्रति औपनिवेशिक शासन का रवैया जान सकेंगे, और
- भारत में श्रमिक वर्ग के उदय के कारण जान सकेंगे
- श्रमिक वर्ग की समस्याएँ समझ पाएंगे
  श्रमिकों के प्रारंभिक संघर्ष के विषय में जान सकेंगे
- इन संघर्षों का महत्व समझ पायेंगे

7.1 प्रस्तावना

यह सही है कि 1857 की जनक्रांति को दबाने में अंग्रेजों ने सफलता पा ली थी लेकिन जनसाधारण -- विशेष रूप से कृषकों और आदिवासियों के मन में अंग्रेज-विरोधी भावना को समाप्त नहीं किया जा सका क्योंकि दमनात्मक अंग्रेजी शासन के कुप्रभाव से ये सबसे

ज्यादा त्रस्त थे। सरकार द्वारा "जमींदारों" को "जनता का स्वाभाविक नेता" मान लिए जाने से कृषक तथा आदिवासी अंग्रेज शासक और जमींदार दोनों के द्वारा सताए जाते थे।

कृषकों और आदिवासियों ने बहुत सारे प्रदेशों में अंग्रेजों के खिलाफ बगावत का झंडा बुलंद किया। इस इकाई में आपको इन्हीं आंदोलनों से परिचित कराने की कोशिश की गई है।

भारत के ब्रिटिश उपनिवेश का अंग बन जाने के बाद अंग्रेजी पूँजीपतियों ने मुनाफा कमाने के लिए यहाँ अपनी पूँजी लगायी। रेल यातायात के शुरू होने के उपरांत कुछ आधुनिक उद्योग लगाए गए। इस तरह उद्योगीकरण, खेती और रेल के सीमित विकास के कारण एक नए वर्ग "श्रमिक वर्ग" का जन्म हुआ। प्रारंभ में इस शोषित वर्ग को संगठित होने या प्रभावकारी ढंग से अपनी आवाज उठाने का कोई तरीका मालूम नहीं था। लेकिन शीघ्र ही ये श्रमिक अंग्रेज पूँजीपतियों और पश्चिमी उपनिवेशिकों द्वारा अपने शोषण का प्रतिरोध करने लगे। यह इकाई इन श्रमिकों के प्रारंभ में संगठित होने और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के प्रयासों की भी चर्चा करती है।

1850-1900 के बीच कृषक, आदिवासी, शिल्पकार और श्रमिकों के जन-आंदोलनों की चर्चा करने से पहले कुछ तथ्यों का स्पष्टीकरण जरूरी है। मसलन, प्रस्तुत विषय वस्तु पर कोई भी चर्चा औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में ही संभव है। यह काल मोटे तौर पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के दूसरे चरण यानि कि "औपनिवेशिक पूँजी" का दौर माना जाता है। पहला चरण, जिसे आमतौर पर "व्यापारिक दौर" के नाम से जाना जाता है, मूलतः व्यापार और वाणिज्य पर आधारित है। इस चरण में भारत के औद्योगिक और पूँजीवादी शोषण का विकास देखा जा सकता है। (अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विभिन्न चरणों के लिए देखें इकाई 1, खण्ड-1)

7.2 औपनिवेशिक प्रभाव

भारतीय कृषि और पारंपरिक हस्तशिल्प उद्योग पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रभाव मुख्य है:

i) भूमि बंदोबस्त (या भू-राजस्व) के नए तरीकों (जैसे स्थायी, रैयतवारी और महलवारी) ने कुछ नयी चीजों जैसे "बाजार-अर्थव्यवस्था" को जन्म दिया तथा पुरानी प्रचलित नीति जैसे चारागाह और जंगल के परंपरागत समुदायिक अधिकारों को नष्ट कर दिया। भू – संबंधी नई नीतियों और विशेषकर भू-राजस्व के नगद भुगतान जैसी नीतियों ने महाजनी (सूद पर कर्ज लेने को) को बढ़ावा दिया। बदले हुए विषम सामाजिक परिप्रेक्ष्य में महाजनी व्यवस्था ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज को पूर्ण रूप से कुछ महाजनों के हाथ में सौंप दिया। आदिवासी क्षेत्रों में यह प्रक्रिया आदिवासियों को खेती में लगाकर उनके परंपरागत व्यवसाय में परिवर्तन लाने में सफल हुई।

ii) सामाजिक विषमता कोई नई बात नहीं थी। किंतु साम्राज्यवाद ने नये तरह का ध्रुवीकरण पैदा कर दिया। यह ध्रुवीकरण अब वैसे लोगों के बीच हो गया था जो भूमि हथिया चुके थे, धन इकट्ठा कर चुके थे और अपने धन की बदौलत न्यायालय में अपनी संपत्ति की रक्षा कर सकते थे दूसरी तरफ वे थे जिनके पारंपरिक अधिकार छीने जा रहे थे। इस विषमता ने नई समस्याओं को जन्म दिया। जिससे अमीर-गरीब के इस नये वर्ग विभाजन के मजबूत होने के साथ-साथ जाति और धर्म का विभाजन भी मजबूत होता गया। उदाहरण के लिए अगर किसी जगह का महाजन किसी खास जाति या धर्म का होता और किसान दूसरी जाति या धर्म से होते तो जाति/धर्म के इस अंतर के साथ वर्ग विषमता, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं, के कारण तनाव बढ़ जाता था। इस तरह आदिवासी क्षेत्रों में बाहर से जाकर बसने वाले साहूकार और महाजनों ने इन आदिवासियों का निर्मम शोषण शुरू कर दिया।

iii) औपनिवेशिक नीति का अन्य प्रमुख पक्ष यह था कि ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने की दृष्टि से भारतीय कृषि का बल पूर्वक ज्यादा से ज्यादा व्यापारीकरण किया गया। भारतीय कृषकों के लिए यह बहुत ही खतरनाक साबित हुआ क्योंकि कृषक अन्न के अभाव के समय में भी वाणिज्यिक फ़सल, नील और रूई ही उगाने के लिए बाध्य थे।

iv) उपनिवेशवाद शिल्पकारों के लिए भी विनाशकारी साबित हुआ क्योंकि इसके कारण भारत ब्रिटेन में बने सामानों का विक्रय केन्द्र बन गया। ब्रिटेन में सामान बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा तैयार किया जाता था। ये सामान भारतीय शिल्पकारों द्वारा बनाए गए सामानों की तुलना में काफी सस्ता और उत्कृष्ट होता था। इस स्थिति में कपड़ा और नमक जैसे पारंपरिक उद्योगों का लगभग सफाया ही हो गया। नई स्थिति ने न केवल बहुत सारे शिल्पकारों को बेरोजगार कर दिया बल्कि इसने खेती पर बोझ भी बढ़ा दिया क्योंकि अब इन शिल्पकारों के लिए खेती के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह गया था।

7.3 कृषक, आदिवासी और शिल्पकार

आगे और चर्चा करने से पहले आइये हम कृषक, आदिवासी और शिल्पकारों के विषय में कुछ जानकारी ले लें।

i) जब हम कृषकों की बात करते हैं तो उन सब लोगों की चर्चा करते हैं जो खेती की प्रक्रिया से सीधे जुड़े रहते हैं। इन लोगों में कुछ तो गरीब थे किन्तु कुछ उनकी तुलना में अधिक संपन्न थे। उपनिवेश काल में यह अंतर और भी बढ़ गया। जमीन के मालिकों की तुलना में किसानों की स्थिति और भी खराब हो गई क्योंकि सरकार जमीन पर सिर्फ जमींदारों के अधिकार को ही स्वीकार करती थी। किसान अब सिर्फ पट्टेदार ही रह गए थे क्योंकि नए कानूनों के अनुसार जमींदार पट्टेदार को किसी भी समय जमीन से हटा सकता था।

ii) भारत में बहुत सारे आदिवासी समूह थे जैसे खोंड, सवार, संथल, मुंडा, कोय,कोल आदि। लेकिन जब हम आदिवासियों की चर्चा करते हैं तो इसका मतलब सिर्फ घूम-घूमकर शिकार तथा भोजन एकत्रित करने वाले समूहों से ही नहीं है बल्कि ऐसे आदिवासी समूहों से है जो जीविकोपार्जन के लिए एक निश्चित स्थान पर बस गये थे और खेती करने लगे थे। ये आदिवासी-कृषक एक जगह बस तो गये परंतु खेती के अलावा ये लोग शिकार भी करते थे एवं वन में पाये जाने वाली लकड़ियों जैसे बाँस आदि का सामान भी बनाते थे। उनके दृढ़ जातीय बंधन और अपेक्षाकृत अलग-अलग रहने की प्रवृत्ति भी उन्हें सामान्य कृषकों से अलग करती है।

iii) शिल्पकार वे लोग थे जो कपड़ा, नमक तथा लोहे के आदि सामानों के उत्पादन में लगे थे ये व्यवसाय ज्यादातर पैतृक व्यवसाय के रूप में चले आ रहे थे। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है ब्रिटेन में बने मिल के सामान के आ जाने से इनके सामान बाजार में नहीं बिक पाते थे। शिल्पकार के विषय में ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम उपलब्ध हैं क्योंकि इन्हें अक्सर कृषक या आदिवासियों के साथ ही सम्मिलित किया जाता था।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित कथनों में कौन सही है और कौन गलत? सही कथनों के सामने (✓) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगाएँ।

i) अंग्रेजों की भूमि नीति महाजनी व्यवस्था को बढ़ावा देती थी।
ii) अंग्रेजों की नीति के कारण आदिवासियों के पारंपरिक अधिकार खतरे में पड़ गए थे।

iii) अंग्रेजी सामानों के भारतीय बाजार में आ जाने से यहाँ के शिल्पकारों को काफी सहायता मिली थी।
iv) कृषक से हमारा अर्थ ऐसे लोगों से है जो कृषि कार्य से सीधे-सीधे जुड़े हुए थे।

2 पाँच पंक्तियों में लिखें कि उपनिवेशवाद ने किस प्रकार भारत में सामाजिक विषमता को बढ़ावा दिया।

....

....

....

....

....

7.4 1857 तक के जन-आंदोलन

अब हम 1857 तक के जन-आंदोलनों की चर्चा करेंगे। इसके बाद 1850 से 1900 के बीच होने वाले कृषक आदिवासी और शिल्पकारों के मुख्य आंदोलन जैसे फितुरि, मेलि, हूल तथा उलगुलन की चर्चा की जाएगी।

7.4.1 उड़ीसा

1850 के दशक के प्रारंभ में उड़ीसा में कुछ आदिवासी आंदोलन हुए। घुमसर के खोंड और बौड़ (1854-56) तथा पार्लियाखेमदी के सवार कई लोकप्रिय आंदोलन के प्रणेता बने।

इन आंदोलनों का श्रेय चक्र बिसोई को जाता है जो 1837 से गिरफ्तारी से बचे रहने में सफल रहा। इन आदिवासी आंदोलनों का मुख्य कारण अंग्रेज प्रशासकों द्वारा "खोंडों" में प्रचलित नरबलि की प्रथा - "मेरिया" - को रोकने का प्रयास था। बदली हुई परिस्थितियों में नये दबावों और अनिश्चितता ने खोड़ों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे "मेरिया" के जरिये भगवान को खुश कर सकें ताकि हल्दी की अच्छी पैदावार हो सके। लेकिन सरकार इस प्रथा को रोकने के लिए कृत संकल्प थी। कुछ सरकारी अधिकारियों का मानना था कि खोड़ों की आर्थिक स्थिति अच्छी होने से "मेरिया" की बलि प्रथा समाप्त हो जाएगी।

चक्र बिसोई और आदिवासियों के प्रारंभिक आंदोलन के विषय में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। चक्र बिसोई ने एक ऐसे लड़के का मामला उठाया था जिसे खोंड मानते थे कि वो धुंमार का राजा था। कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिससे पता चलता है कि खोड़ों ने धुंमार की कुछ बस्तियों पर हमला किया था (1854) और चक्र बिसोई का विरोध करने से इंकार कर दिया। आंदोलन को दबाने के प्रयास में पुलिस ने एक साधू को चक्र समझकर हिरासत में ले लिया ऐसा प्रतीत होता है पताना और कालाहण्डी के कुछ जमींदारों और राजाओं ने जो अंग्रेजी शासन से सशंकित थे चक्र से संपर्क बनाए रखे।

राधाकृष्ण दण्डसेना के नेतृत्व में 1856-57 में पर्लियाखेमदी में सवार आंदोलन हुआ। अंग्रेज शासक ये मानते थे कि इस आंदोलन और चक्र बिसोई जिसे गिरफ्तार करना मुश्किल था के बीच कुछ संबंध था। 1856 के बाद चक्र बिसोई के बारे में कुछ भी सुना नहीं गया। 1857 में दण्डसेना को फाँसी पर लटका दिये जाने से सवार आंदोलन ठण्डा पड़ गया। इसके बाद चक्र बिसोई जनता की स्मृति में धूमिल होता गया। ये कहना मुश्किल है कि चक्र बिसोई सचमुच ही इन आंदोलनों से जुड़ा था या सिर्फ आदिवासियों के आंदोलन का प्रतीक बन गया था।

7.4.2 संथल विद्रोह

1855-57 में हुए वीरभूम, बाँकुरा, सिंहभूम, हजारीबाग, भागलपुर और मुंगेर के आदिवासी विद्रोह प्रमुख हैं। इन विद्रोहों के भड़कने में औपनिवेशिक शासन के स्वरूप की अहम् भूमिका है। उत्तरी और पूर्वी भारत से कुछ ऐसे जमींदार और सूदखोरों की चर्चा मिलती है जो आदिवासियों को पूरी तरह अपने चंगुल में दबा कर रखते थे। ये सूदखोर 50 प्रतिशत से 500 प्रतिशत की दर पर पैसा उधार दिया करते थे। इसके लिए साहूकार दो तरीके अपनाते थे। एक तरफ "बड़ा बान" उनसे सामान लेने के लिए और दूसरी तरफ "छोटा बान" उनको सामान देने के लिए। वे संथलों की जमीन भी हड़प लेते थे।

जमींदारों के बिचौलिये भी निर्दयता से आदिवासियों का शोषण करते थे। यहाँ तक कि हमें बंधुआ मजदूरी और रेल लाइनों पर काम कर रही महिलाओं को अपनी हवस का शिकार बनाने का भी उदाहरण मिलता है।

जब विद्रोह शुरू हुआ तो यह प्रमुखतः महाजन और व्यापारियों के खिलाफ था न कि अंग्रेजों के। आदिवासियों ने एलान किया कि उनके नये भगवान ने उन्हें आदेश दिया था कि वे हर एक भैंस वाले हल के लिये दो आना और हर एक गाय वाले हल के लिए आधा आना की दर से सरकार को कर दें। उन्होंने सूद की दर भी तय कर दी जो कम थी। महाजनों पर हुए गुप्त आक्रमण के लिए संथलों को सजा दी जाती थी जबकि उनके शोषकों पर कोई अंकुश नहीं था, उनको डाँटा भी नहीं गया। इससे पुनः विद्रोह फैला और गलत तरीके से पैसा बटोरने वाले महाजनों के यहाँ चोरी, डकैती, सेंधमारी आदि की घटनाएँ बढ़ने लगी।

ऐसी स्थिति में सिद्दो और कानू ने यह घोषणा करके कि उनके भगवान (ठाकुर) ने उन्हें अपने शोषकों की आज्ञा का उल्लंघन करने का आदेश दिया है, बारूद में आग का काम किया। 30 जून 1855 को दस हजार संथल भागड़ीही में जमा हुए जहाँ सिद्दो और कानू ने "भगवान के वचन" का एलान किया कि संथल अपने शोषकों के चंगुल से बाहर आएँ। संथलों ने इस विद्रोह को "बुराई" पर "अच्छाई" की विजय का नाम दिया। उनकी यह मान्यता थी कि उनका भगवान उनके साथ लड़ेगा जिससे इस विद्रोह को एक नैतिक औचित्य भी प्राप्त हुआ।

1. संथल नेता सिद्दो

किस तरह इस विद्रोह ने तूल पकड़ा और कैसे समकालीन परिस्थितियों में इसका स्वरूप विकसित हुआ, यह जानकारी दिलचस्प है। मुख्य रूप से यह विद्रोह महाजनों और व्यापारियों के खिलाफ था परंतु बाद में पुलिस,गोरे काश्तकार, रेलवे अभियन्ता और अधिकारियों के भी खिलाफ हो गया। संथलों ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे औपनिवेशिक शासन के भी खिलाफ हैं।

विद्रोह छह महीनों तक चला। पूर्व सूचना देकर आदिवासियों ने बहुत सारे गाँवों पर हमला कर दिया। विद्रोहियों द्वारा जमींदारों और सरकार पर बहुत दबाव डाला गया। कई इलाकों में जमींदारों ने विद्रोह को दबाने में शासन की मदद की।

2 पाकुर का किला जहाँ संथलों से मात खाकर अंग्रेज सिपाहियों ने शरण ली।

7.4.3 1857

इसके बाद हम संक्षेप में 1857 की जन-क्रांति के बारे में कुछ कहना चाहेंगे। इतिहासकारों में इस विद्रोह में जनता की भागीदारी को लेकर मतभेद है। कुछ विद्वान जैसे ऐरिक स्टोक्स (पीजेन्ट एण्ड राज- कैंब्रिज- 1978) लिखते हैं कि इस आंदोलन में ग्रामीण अभिजात्य वर्ग (जमींदार आदि) कृषक और शिल्पकारों का मार्गदर्शन कर रहे थे क्योंकि अंग्रेजों के आने से इनके स्वार्थों को भी धक्का लगा था। दूसरे इतिहासकार जैसे एस.बी. चौधरी और (थियोरीज ऑफ द इन्डियन म्युटिनी - 1857-59 कलकत्ता 1965) रूद्रांशु मुखर्जी (अवध इन रिवोल्ट - दिल्ली - 1984) का मानना है कि कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांशतया भूपति ही इसका मार्गदर्शन कर रहे थे। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि कृषक ही विद्रोह की शक्ति थे और जो सिपाही थे वो भी वर्दी में कृषक ही थे।

सूदखोरों के खिलाफ आम असंतोष के कारण कृषक और शिल्पकार संगठित हो गए। अंग्रेज शासन "बनियों का राज" समझा जाता था और विद्रोह सूदखोरों और अंग्रेजों दोनों के खिलाफ था। इसके साथ-साथ कृषकों के प्रथागत अधिकारों में कटौती से भी क्षोभ था।

विद्रोह के स्वरूप से स्पष्ट है कि इसके अंग्रेज विरोधी सामन्त – विरोधी चरित्र का उदय इसी समय हुआ था।

फिरंगी राज के चिह्न जैसे पुलिस थाने, रेल की पटरी, टेलीग्राफ के तार आदि नष्ट कर दिए गए। 1857 के साथ जो दूसरे जन-आंदोलन हुए उनमें हमें दस्तावेज नष्ट किए जाने का भी प्रमाण मिलता है। बही खातों के नष्ट करने का अर्थ था – नई कर-नीति का विरोध। आक्रमण के लक्ष्य मुख्यतया विदेशी थे परंतु उनके भारतीय सहयोगी जैसे साहूकार, नीलामी ठेकेदार, महाजन और व्यापारी भी कुछ प्रदेशों में विरोध के लक्ष्य बने।

इस दौर में शाहजहाँपुर, साहिबाबाद, गया और पलामू में उद्योगों के नष्ट किए जाने का भी उदाहरण मिलता है। हमारे प्रमाण बहुत सीमित हैं किन्तु ये प्रमाण साफ-साफ शिल्पकारों के उद्योगीकरण के खिलाफ क्षोभ को दर्शाते हैं। शिल्पकार नए यंत्रों के आने से शंकित थे। ये प्रवृत्ति ब्रिटेन में शुरू के उद्योगीकरण के समय (1830) भी पायी जाती है।

ब्रिटिश सत्ता के समाप्त होने से और आजादी के आभास के कारण कृषक और शिल्पकारों ने अमीर सामन्तों की जमीन हड़प ली और उनके घरों को लूटा। उनकी संपत्ति के कागज और सरकारी दस्तावेज नष्ट कर दिए गए।

इस स्थिति ने विद्रोह के स्वरूप को बदल दिया। कुँवर सिंह जैसे बड़े जमींदार ने जो बिहार में विद्रोह का नेतृत्व कर रहे थे अपने अनुयाइयों को ऐसे काम से रोक दिया क्योंकि ऐसा करने पर ब्रिटिश शासन के बाद संपत्ति के सही आधिपत्य का निर्णय और एक पर दूसरे के देय का पता करना मुश्किल हो जाता।

बोध प्रश्न 2

1) विद्रोह और उससे जुड़े हुए नेताओं के नामों का मिलान करें :

i) चक्र बिसोई	अ) सवार विद्रोह
ii) सिद्दो और कानो	ब) खोंड और घुमसर
iii) राधाकृष्ण दण्डसेना	स) संथल विद्रोह

2) संथलों की समस्याओं का पाँच पंक्तियों में वर्णन करें।

....
....
....
....
....

3) निम्न वक्तव्यों में कौन सही (✓) और कौन गलत (×) है?

i) खोंड़ बलि देकर अपने भगवान को अच्छी फसल के लिए खुश करते थे।

ii) राधाकृष्ण दण्डसेना अंग्रेजों द्वारा पुरस्कृत किए गए थे।

iii) जमीदारों ने अंग्रेजों के संथल विद्रोह कुचलने में सहायता दी थी।

iv) इतिहासकारों में 1857 के विद्रोह के विषय में लोगों के भाग लेने के विषय में कोई मतभेद नहीं है।

v) शिल्पकार नई मशीनों के आगमन का स्वागत कर रहे थे।

7.5 1857 के बाद के जन – आंदोलन

1857 के विद्रोह के बाद जन – आंदोलन समाप्त नहीं हुए। हम देखते हैं कि इसके बाद भी बहुत सारे आंदोलन हुए। इनमें से कुछ की चर्चा हम करेंगे।

7.5.1 नील विद्रोह

1859 का बंगाल का नील विद्रोह एक प्रमुख विद्रोह है जिसकी चर्चा हम करना चाहेंगे। 1770 में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा नील की खेती शुरू की गयी। अंग्रेज काश्तकारों द्वारा जबरदस्ती तथा कानूनी तिकड़मों द्वारा किसानों को घाटे पर भी नील उगाने के लिए बाध्य किया जाता था। चूँकि कृषक स्वयं खाने तक के लिए अनाज नहीं उगा पाते थे अतः इससे उनमें बहुत असंतोष पैदा हुआ। 1859 तक हजारों कृषकों ने नील की खेती करने से इंकार कर दिया। उन्होंने अपने संगठन बनाये तथा बागान-मालिकों और उनके सैनिकों का प्रतिरोध करने लगे। समकालीन अखबार जैसे "द बंगाली" में विस्तार से इसकी रपट प्रकाशित की गई और बताया गया कि विद्रोह सफल रहा था। दीनबंधु मित्र ने बंगला में "नीलदर्पण" लिखा और नील कृषकों की दुर्दशा को उजागर किया।

नील विद्रोह के कारण सरकार जाँच समिति गठित करने को बाध्य हो गई (1860), विद्रोह की वजह से बंगाल में बगीचा प्रथा को काफी नुकसान पहुँचा और खेतिहरों को बाध्य होकर बिहार चले जाना पड़ा।

3. बंगाल के नील विद्रोह का क्षेत्र
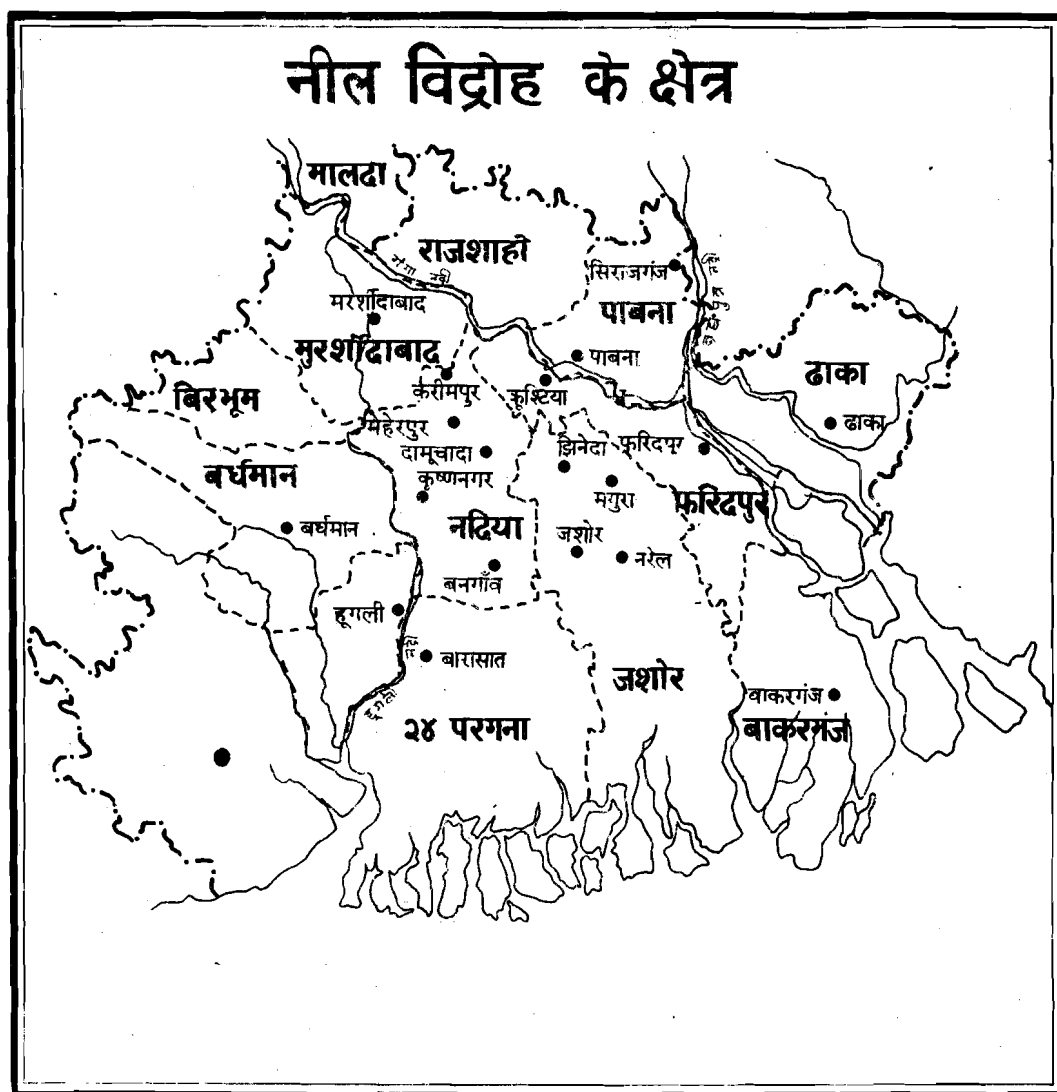
4. दीनबंधु मित्र

7.5.2 मोपला विद्रोह

1850-1900 के बीच मलाबार में मोपला विद्रोह शुरू हुआ। चूँकि जेनमी जमींदारों को पुलिस कानून और कर अधिकारियों द्वारा समर्थन मिल रहा था अतएव उन्होंने मोपला कृषकों पर अपनी गिरफ्त बढ़ाई। कृषकों ने जमींदारों और अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। यह एक रोचक तथ्य है कि उक्त विद्रोह, जो मुख्य रूप से अमीर और गरीब के बीच की लड़ाई थी, को औपनिवेशिक शासकों ने सांप्रदायिक रूप दे दिया क्योंकि जमींदार हिन्दू और कृषक मुसलमान थे। जमींदारो का अधिकाधिक बढ़ता अत्याचार 1880 तक चलता रहा। कृषकों के विद्रोह का गला घोटने के लिए उन्होंने कई विद्रोहियों को जिंदा जला दिया ताकि उनका उत्साह समाप्त हो जाए। डी.एन. धनागरे ने अपनी पुस्तक (पीजेन्ट मूवमेन्ट, इन इंडिया, 1920-50, दिल्ली 1903) में बताया है कि कैसे इन अत्याचारों के कारण कृषक बदला लेने पर उतारू हो गये।

1857 में मोपला कृषकों की ओर से मद्रास सरकार को बेनामी दरखास्त दी गयी जिसके कारण जाँच शुरू हुई। 1882-85 के बीच पुनः जमींदारों और कृषकों के बीच मनमुटाव बढ़ा और कृषकों ने लूट और आगजनी के साथ-साथ मंदिरों को भी नुकसान पहुँचाया। इन कारनामों की वजह से इस विद्रोह को जो मुख्य रूप से जमींदार और कृषकों के बीच का वर्ग संघर्ष था, हिन्दू विरोधी संघर्ष का नाम दे दिया गया। 1896 तक मोपला विद्रोह ने आक्रामक जातीय दंगे का रूप ले लिया।

7.5.3 पाबना

दूसरा मुख्य विद्रोह बंगाल में पाबना (1873-1885) के कृषकों ने किया। 1859-73 तक पाबना के कृषकों ने कर में वृद्धि का कोई विरोध नहीं किया और इस अधिक बढ़ी हुई दर पर बिना किसी विरोध के कर देते गए। विद्रोह की जड़ में यह कारण था कि जमींदार कृषकों से उनकी जमीन पर से उनका अधिकार छीन लेना चाहते थे। अधिकार युक्त किसानों को जबरदस्ती दस्तख़्त करा कर पट्टेदार बना दिया गया।

कृषकों को नए कानूनों के ज्ञान से उन पर हो रहे अत्याचारों का बोध हो गया। कुछ स्थानों में जैसे त्रिपुरा में अनुचित उधारी की भी प्रथा थी। 1873 में पाबना के कृषकों ने "एगरेरियन लीग" बनाई जो शीघ्र ही पूरे जिले में फैल गयी। बहुत सारे अखबारों के द्वारा जैसे "अमृत बाजार पत्रिका" जो जमींदार समर्थक था लीग का विरोध किया गया। जो बात विचारणीय है वो यह कि कृषक ब्रिटिश शासन का विरोध नहीं कर रहे थे, वे कहते थे कि उनकी इच्छा "इंग्लैंड की रानी" का किसान बनने की है। वे अपने सताए जाने का विरोध कर रहे थे न कि उधार चुकाने का। वे अपने सुधार के लिए "रानी का किसान" बनना चाहते थे।

कुछ तथ्यों से हमें पता चलता है कि शुरू-शुरू में औपनिवेशिक शासन कृषकों का समर्थक रहा तथा उन पर जमींदारों के अत्याचार के मामलों में कृषकों का पक्ष लिया। जैसे-जैसे आंदोलन आगे बढ़ा और संगठित होने के नए तरीके सामने आने लगे कृषकों ने जमींदारों की असंवैधानिक माँगों के खिलाफ आवाज उठाई। कल्याण कुमार गुप्त (Pabna Disturbances and the Politics of Rent, 1873-85, NewDelhi, 1974) ने विद्रोह के कानूनी पक्ष की चर्चा करते हुए बताया है कि हिंसा की वारदात बहुत कम थी और कृषक मुख्यत: अपनी संपत्ति बचाने के लिए ही कार्य कर रहे थे।

5. पाबना विद्रोह का क्षेत्र
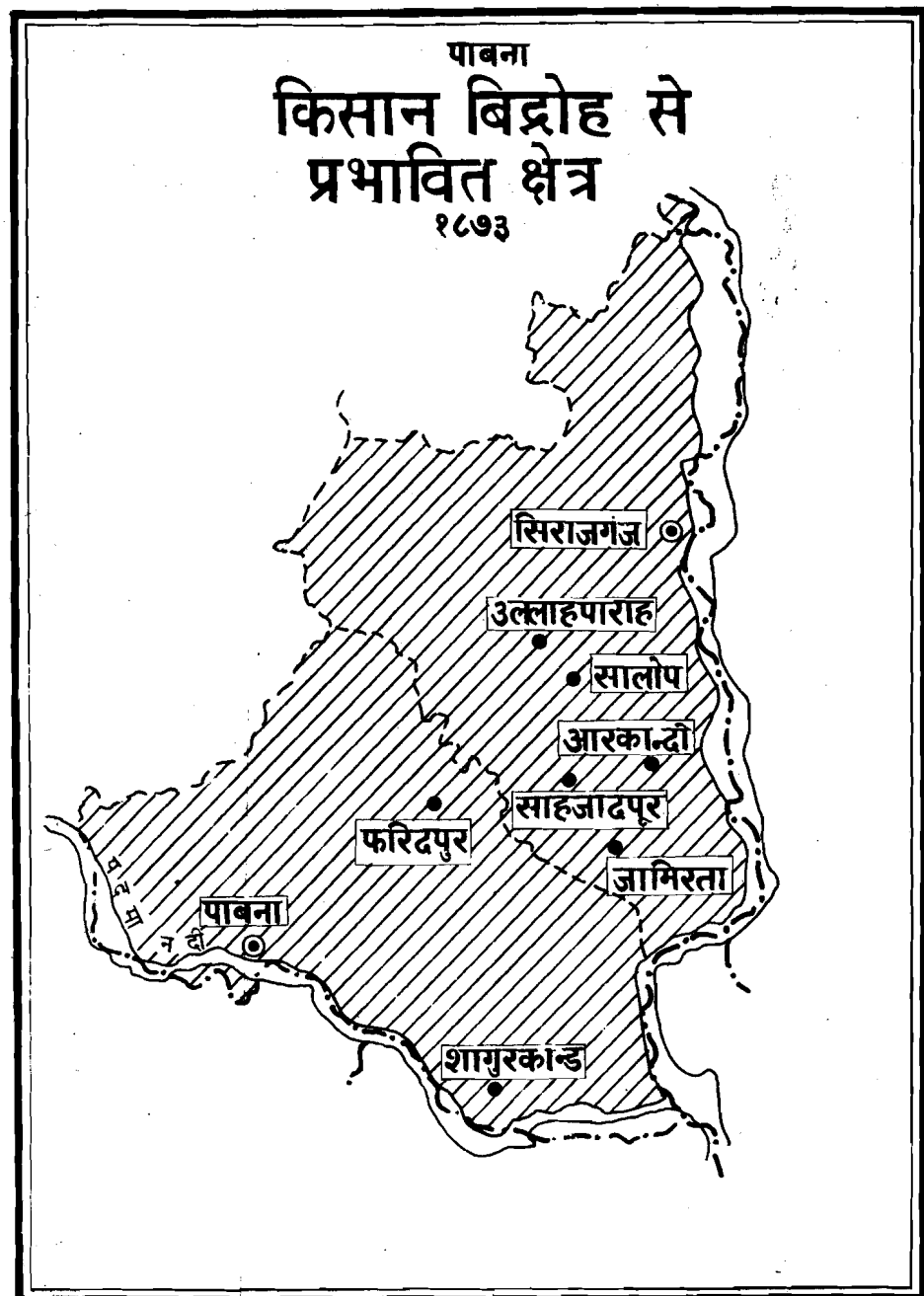
जैसे-जैसे विद्रोह बढ़ता गया जमींदार भी बदला लेने का उपाय करने लगे। कृषकों के मुख्य रूप से मुसलमान होने के कारण (करीब दो तिहाई कृषक और 70 प्रतिशत आबादी मुसलमान थी) जमीदारों और अंग्रेजों ने इसे सांप्रदायिक दंगे का नाम दिया। लेकिन यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि दो कृषक नेता केशवचंद्र राय और शंभुनाथ पाल हिन्दू थे।

1873 से करीब एक दशक तक पाबना विद्रोह ने जमींदारों द्वारा कृषकों के शोषण को कुछ हद तक थामे रखा। धीरे-धीरे विद्रोह ढाका, राजशाही, बाकरगंज, फरीदपुर, त्रिपुरा और बोगरा में भी फैल गया।

7.5.4 दक्कन के दंगे

दक्कन के दंगों (1875) का मुख्य कारण रैयतवारी प्रथा थी। हमें ऐसे सूदखोरों का उदाहरण मिलता है जो कृषकों को ऊँची ब्याज दर के जरिये (25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत) लूट रहे थे। कर वसूली की सामूहिक व्यवस्था के लोप होने से पूर्व की तरह सूदखोर गाँव की कानूनी व्यवस्था से बाध्य नहीं था। अदालतें और नए कानून "वानि" (गाँव के सूदखोर) और कुनवी (कृषक जाति) के बीच के अंतर को उजागर कर रहे थे और वानि की सहायता भी कर रहे थे। इससे कृषकों से सूदखोरों के पास संपत्ति के स्थानान्तरण में मदद मिल रही थी। कुनवी की अचल संपत्ति को भी उगाही के लिए बेचा जा सकता था। इन सब समस्याओं के साथ-साथ आबादी भी बढ़ रही थी और औपनिवेशिक शासकों की कर वृद्धि की अव्यवहारिक नीति भी जारी थी।

इन परिस्थितियों में स्थिति विस्फोटक हो गई। पूना के सार्वजनिक सभा के युवा ब्राह्मण नेता और प्रतिष्ठित जमींदार परिवारों ने जिन्हें स्वयं समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था कृषकों के लिए लड़ना शुरू कर दिया। टाइटिल डीड और मॉरगेज बांड,जिसे वानियों द्वारा अत्याचार का हथकंडा बना लिया गया था,कुनवी उस पर उनका स्वामित्व खत्म कराना चाहते थे।

दक्कन के दंगों ने कुनवी और वानि को अलग कर दिया। जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं यहां पर भी वर्ग संघर्ष को जाति संघर्ष का रंग दिया गया।

7.5.5 कोय विद्रोह

1879-80 के दौरान जिसे आज का आंध्र प्रदेश कहा जाता है, में कोय विद्रोह हुआ। कोय विद्रोह से उड़ीसा के कोरापुट जिले का मलकानगिरि क्षेत्र भी प्रभावित था। कोय नेता तोमा डोरा ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया। विद्रोह आदिवासियों द्वारा महसूस की जा रही परेशानियों को उजागर करता है। आदिवासियों के जंगल पर चले आ रहे पारंपरिक अधिकार में कमी और सूदखोरों द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति पर पूरी तरह कब्जे के खिलाफ यह विद्रोह हुआ। सूदखोर उनकी जमीन अपने नाम लिखवा रहे थे।

कोय तोमा डोरा को कोय मलकानगिरि का "राजा" मानते थे। इसके प्रमाण मिलते हैं कि मोतू में इन लोगों ने पुलिस थाने पर कब्जा कर लिया था। इसके शीघ्र बाद डोरा पुलिस गोली से मारा गया और विद्रोह लड़खड़ा गया।

7.5.6 बिरसा मुंडा विद्रोह

अंतिम विद्रोह जिसकी चर्चा हम करेंगे वह 1874 से 1901 के बीच का था। 1895 के बाद से इस विद्रोह का नेतृत्व बिरसा मुंडा कर रहे थे। दक्षिण बिहार के छोटानागपुर क्षेत्र के करीब 400 वर्ग मील में यह विद्रोह फैल गया था।

औपनिवेशिक शासन से आदिवासियों के लिए उत्पन्न हुई परेशानियां – पारंपरिक अधिकार में कटौती, बंधुआ मजदूरी तथा औपनिवेशिक कानून इस विद्रोह का संबंध शुरू में इसाई धर्म से था। जैसा कि के.एस. सिंह (बिरसा मुंडा एण्ड हिज मूवमेंट, 1874-1901, दिल्ली,

1983) लिखते हैं कि आदिवासी इस कारण इसाई धर्म स्वीकार कर रहे थे ताकि जर्मन मिशनरी जमींदारों के अत्याचार को खत्म कर दें। 1857 के समय कुछ जमींदारों ने मिशन पर भी हमला किया क्योंकि मिशनरी मुंडा लोगों के प्रति सहानुभति रखते थे। 1858 से हमें इसाई आदिवासियों द्वारा अत्याचारी जमींदारों के खिलाफ लड़ने का भी प्रमाण मिलता है। यह प्रवृति 1862 से 1882 के बीच बहुत आम थी। 1867 में 14,000 "इसाइयों" ने छोटानागपुर के राजा और स्थानीय पुलिस के खिलाफ औपनिवेशिक अधिकारियों को अर्जी भी दी थी। बेदखल मुंडा लोगों को जमीन पर दखल दिलाने का भी कुछ प्रयास किया गया था।

मार्च 1879 में मुंडा लोगों ने यह एलान किया कि छोटानागपुर उनका है। 1881 में कुछ सरदारों ने जॉन द वापटिस्ट के नेतृत्व में देवसा के राज्य की घोषणा कर दी। इसके बाद विद्रोह में कुछ परिवर्तन आया। जर्मन पादरियों से नाखुश होकर मुंडा लोगों ने उनसे अपना संबंध तोड़ लिया। अब वे कैथोलिक मिशन के पास चले गए। औपनिवेशिक प्रशासक और जमींदार विद्रोह को खत्म करने के लिए आपस में सहयोग करने लगे जिसका परिणाम यह हुआ कि विद्रोही सारे यूरोपीय लोगों, इसाई मिशन, सरकारी अफसर, दिकु और जमींदारों के खिलाफ हो गए।

6. बिरसा मुंडा

इन परिस्थितियों में इनका नेतृत्व बिरसा मुंडा करने लगे। बिरसा मुंडा शुरू में अपने दवा के ज्ञान और बीमारों को ठीक करने की शक्ति के कारण जाने गए थे। मुंडा एक ऐसी स्थिति की कल्पना करने लगे जिसमें न तो देशी और न ही विदेशी शोषक हों। ताकतवर शासक से जीत के प्रयास में वे "जंगल के पानी" पर विश्वास करने लगे और उन्हें ऐसा विश्वास हो गया कि वो उन्हें अपराजेय बना देगा। इस विद्रोह में महिलाओं की भी भूमिका महत्वपूर्ण थी। कुछ मौकों पर हिंसा भी हुई लेकिन विद्रोह में गरीब गैर-आदिवासियों के खिलाफ कोई भी भाव नहीं था।

बिरसा मुंडा का विद्रोह निर्ममता से दबा दिया गया। बिरसा को फाँसी पर लटका दिया गया और शासक तंत्र को कठोरता से पेश आने का आदेश दिया गया।

7. बिरसा के अनुयायियों की गिरफ्तारी

ऊपर दिये गए तथ्यों से कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। जन-आंदोलन जिनकी चर्चा हम कर रहे हैं, औपनिवेशिक शासक और भारतीय धनाढ्य (सूदखोर और जमींदार) जिसे वे दिकु कहते थे, दोनों के खिलाफ था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि दिकु के खिलाफ यह आंदोलन इसलिए नहीं था कि वे गैर-आदिवासी थे बल्कि इसलिए था कि वे अत्याचारी थे।

7.6 जन-आंदोलन का स्वरूप

इन विद्रोहों के कुछ अंतर्निहित प्रमुख लक्षण थे:

i) इन सब विद्रोहों में पुराने और सुनहरे दिनों को याद करने का प्रयास था। इसमें 1857 के समय मशीनों का विरोध भी निहित था। ये विद्रोह बेहतर वर्तमान के लिए थे इन विद्रोहों में प्रचलित पद्धति जैसे साहूकारी, जमींदारी और ब्रिटिश प्रशासन का विरोध भी शामिल था। उदाहरण के लिए सिदो और कानो वर्तमान कर के बदले वार्षिक कर के पक्ष में थे।

   कई बार पारंपरिक समृद्ध वर्ग का भी नेतृत्व इन्हें मिला क्योंकि उपनिवेशवाद से उनके स्वार्थों को भी धक्का पहुँचा था।

ii) इसके विपरीत कुछ अवसरों पर ये औपनिवेशिक ताकतों के साथ मिलकर जमींदार और साहूकार के खिलाफ लड़ाई लड़े परंतु मुंडा अनुभव से ये समझने लगे कि उनका एक ही दुश्मन है और वो है उपनिवेशवाद। कुछ अवसरों पर ब्रिटिश शासन के भ्रम से भी कुछ लोगों को गलतफहमी हो गयी जैसे पाबना विद्रोह में, जिसमें लोग "रानी के किसान" बनना चाहते थे। इससे निश्चित तौर पर उपनिवेशवाद के खिलाफ आंदोलन को धक्का पहुँचा। ये विचारणीय है कि ये विद्रोही कैसे अपने मित्र और दुश्मन का निर्णय करते थे। 1857 में जो विद्रोह अंग्रेजों के खिलाफ शुरू हुआ वह मुख्यत: सामंतवाद के खिलाफ चला गया और सामंतों के लिये परेशानी का कारण बना। फिर सामंत विरोधी और इसाई बिरसा मुंडा विद्रोह भी उपनिवेशिवाद विरोधी हो गया।

iii) जिन जन-आंदोलनों की चर्चा हम कर रहे हैं वह एक ऐसे न्यायोचित समाज की

कल्पना करता था जिसमें सबको बराबरी का दर्जा हो और हर कोई प्रसन्न हो। ये कृषकों के रामराज्य की कल्पना थी। कृषक चिन्तन में सिदो, कानो और बिरसा जैसे मसीहाओं के अवतरण की उम्मीद थी।

iv) इन जन – आंदोलनों में जाति और धर्म की भी बड़ी अहम भूमिका थी। इस देश में जाति और धर्म के बहुतायत के कारण हम देखते हैं कि जब भी ये विद्रोह वर्ग संघर्ष का सीधा रूप लेने को होते थे उसमें सांप्रदायिक भाव आ ही जाता था। सामंती जमींदार समय-समय पर जब उनके अस्तित्व पर खतरा आ जाता था तो इन जन आंदोलनों को सांप्रदायिक रंग दे देते थे। मालाबार और पाबना का उदाहरण यहाँ दिया जा सकता है जहाँ जन – आंदोलनों को जमींदारों द्वारा दंगे का नाम दे दिया गया था।

धर्म और जन – आंदोलनों की चर्चा करते समय हम देखते हैं कि कैसे मालाबार और छोटानागपुर में जन-साधारण को इसने अत्याचारियों के खिलाफ संगठित किया था। इसाई धर्म इस देश में औपनिवेशिक शासन की ही देन था फिर भी यह सामंतों और औपनिवेशिक शासन के खिलाफ हो गया जो इस बात को उजागर करता है कि भारत जैसे देश में इसकी भूमिका कैसे बदली। धर्म के इस दोहरे रूप को समझना जरूरी है।

v) इन जन – आंदोलनों का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू अमीरों के खिलाफ अपराध और लूट का था। जबकि ये अपराध सरकारी दस्तावेजों में छोटे ही माने गए हैं फिर भी ये जन आंदोलन के अंग थे। अत्याचारियों पर प्रहार करना सिर्फ उन्हें सबक सिखाने के लिए था। इसी वजह से इन अपराधों को जन सहमति मिल जाती थी और ये सामूहिक रूप से किए जाते थे।

vi कृषक आदिवासी और शिल्पकारों में एकता का भाव भी महत्वपूर्ण पहलू है। यह रोचक है कि क्षेत्रीय और जातीय बाधाएं जन – आंदोलन में टूट जाती थीं। उदाहरण के लिए पाबना विद्रोह अपने क्षेत्र से बाहर भी फैला और बिरसा विद्रोह में मुंडा और कोल दोनों ही संगठित हुए जिसमें गरीब गैर आदिवासियों के खिलाफ कोई भावना नहीं थी।

vii) ये जन – आंदोलन बुद्धिजीवी और जन साधारण के बीच फर्क को कम करने में काफी हद तक सफल रहे। यह प्रवृत्ति खास तौर से बंगाल में देखी जा सकती है जहाँ कुछ अखबारों और पुस्तकों (जैसे नीति दर्पण, 1860) में किसानों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी।

बोध प्रश्न 3

1) निम्न वक्तव्यों में से कौन सही (✓) और कौन गलत (×) हैं।

i) अंग्रेज बगान स्वामी कृषकों को नील उगाने के लिए बाध्य करते थे।
ii) नील विद्रोह की अखबारों में कोई चर्चा नहीं होती थी।
iii) मोपला विद्रोह को सांप्रदायिक रंग औपनिवेशिक शासकों द्वारा दिया गया।
ii) कुनबी और वानी में बहुत सौहार्दपूर्ण संबंध था।
v) मुंडाओं ने गैर आदिवासी गरीबों पर प्रहार किया।

2) नेताओं के नाम उन विद्रोहों से मिलाएं जिससे उनका संबंध था।

i) तोमा डोरा	अ) पाबना विद्रोह
ii) शंभुनाथ पाल	ब) मुंडा विद्रोह
iii) बिरसा मुंडा	स) कोय विद्रोह

3) दस पंक्तियों में इस समय के जन – आंदोलनों के मुख्य लक्षणों की विवेचना करें।

....

7.7 श्रमिक वर्ग के आंदोलन

कृषक आदिवासियों और शिल्पकारों के जन-आंदोलनों की चर्चा करने के बाद हम 1850 से 1900 के बीच मिल मजदूरों की भूमिका की चर्चा करेंगे। ये मिल मजदूर कौन थे? जैसा कि हम प्रस्तावना में बता चुके हैं कि ये मजदूर वे सारे कृषक और शिल्पकार थे जिन्हें अपनी जीविका से उपनिवेशवाद के कारण विस्थापित कर दिया गया था। ये मजदूर नये उद्योगों से जुड़ गए जिसकी शुरुआत भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण हुई थी। ये क्षेत्र पूर्ण रूप से ब्रिटिश पूँजीपतियों द्वारा 1840 के बाद विकसित किया गया। कच्चे माल की बहुतायत और सस्ते श्रम (श्रमिक) की उपलब्धि के कारण ब्रिटिश पूँजीपतियों ने 1839 के बाद चाय बगान और 1850 के बाद जूट, कोयला खान और रेल उद्योग तथा 1900 के बाद गोदी (पोर्ट) उद्योग पर पैसा लगाना शुरू कर दिया। कपड़ा-उद्योग अकेला ऐसा उद्योग था जिसमें भारतीय उद्योगपति पैसा लगा रहे थे। भारतीय उद्योगपति इस उद्योग में आगे थे। कपड़ा उद्योग 1850 के करीब शुरू हुआ और बंबई तथा अहमदाबाद के निकट ही इसका विस्तार हुआ।

ये आधुनिक उद्योग पूँजीवाद के पूर्ण विकास में कोई सहायता नहीं कर सके क्योंकि ये पुरानी सामंती अर्थव्यवस्था पर आधारित थे। औपनिवेशिक शासन जानबूझकर सामंती अर्थव्यवस्था को बचाए हुए था। वैसे भी यह भारत के विकास के लिए तो था भी नहीं। इसके कुछ निश्चित निहित अर्थ हैं : आधुनिक उद्योगों में मजदूर अर्ध-नग्न स्थिति में थे। 15 से 16 घंटों तक काम करने के बावजूद उन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता था और उन्हें (महिला तथा बच्चे सहित) पीटा भी जाता था। उन्हें जेल के कैदियों से बदत्तर भोजन मिलता था।

म्युनिसिपैलिटी के कार्यालय से प्राप्त विवरणों से पता चलता है कि बीमारी के कारण बहुत से खेतिहर मजदूरों की जानें गई थीं। इन परिस्थितियों में मजदूर कभी संगठित नहीं हो सके। जिन विद्रोहों का हमें उदाहरण मिलता है वे प्रतिक्रियायें मात्र थी जो प्रतिकूल परिस्थितियों की स्वाभाविक उपज थी।

7.7.1 शिक्षित वर्ग के प्रयास

1850 से 1900 के बीच मजदूर असंगठित रूप में विरोध प्रकट करते रहे। इन विरोधों को सुकोमल सेन ने (वर्किंग क्लास ऑफ इंडिया : हिस्ट्री ऑफ इमर्जेन्स एण्ड मूवमेंट—1830 1970 कलकत्ता, 1979) प्रारंभिक विद्रोह माना है। इस बीच कुछ पढ़े-लिखे लोग मजदूरों की समस्याओं के प्रति जागरूक होने लगे थे। 1870 में ब्रह्म समाज के सासीपाद बनर्जी ने "वर्किंग मेन्स क्लब" बनाया और 1874 में कलकत्ता के निकट बड़ा नगर से "वर्किंग मेन्स" नाम की पत्रिका निकाली। 1878 में कलकत्ता ब्रह्म समाज ने "वर्किंग मेन्स मिलन" की स्थापना की ताकि मजदूरों के बीच धार्मिक उपदेशों (नैतिकता) का प्रचार किया जा सके।

1870 तक सोराबजी, सपूर्जी बंगाली और नारायण मेघाजी लोखन्दी बंबई के कपड़ा मिल

मजदूरों के हित में काम करने लगे थे। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप 1884 में एक ज्ञापन तैयार हुआ जिसमें रविवार को छुट्टी, दोपहर में डेढ़ घंटे का अवकाश, 6.30 सुबह से सूर्यास्त तक काम, काम किए गए महीने का वेतन महीने की पन्द्रह तारीख को भुगतान, घायल होने तथा बीमारी की अवधि में पूरा वेतन तथा अपंग हो जाने पर पेंशन की व्यवस्था की माँगें थीं। इस ज्ञापन पर 5,000 मजदूरों ने दस्तख्त किए और 1884 के बंबई सरकार द्वारा गठित कमीशन को दिया गया। इसका प्रभाव 1891 के भारत के पहले इंडियन फैक्ट्रीज एक्ट पर स्पष्ट रूप से पड़ा।

24 अप्रैल 1890 को लोखुंदी ने एक सभा बुलाई जिसमें 10,000 मजदूर सम्मिलित हुए। दो महिला मजदूरों ने इस मौके पर भाषण भी दिया। इसी समय एक ज्ञापन बंबई मिल मालिकों की एसोसिएशन को भेजा गया जिसमें साप्ताहिक छुट्टी की माँग की। 10 जून 1890 को यह माँग स्वीकार कर ली गयी और इसे मजदूरों द्वारा उनकी जीत माना गया। परंतु यह संवैधानिक नहीं था और इसे लागू नहीं किया जा सका। लेकिन सभी उद्योगिक केंद्रों में सप्ताह में एक दिन की छुट्टी की माँग एक मुख्य माँग बन गई।

7.7.2 हड़ताल

ये सारे प्रयास मजदूरों को संगठित करने के लिए थे। इस समय के मजदूर आंदोलन स्वतः स्फूर्त हुए। बंगाल में 1853 में नदी यातायात के कुलियों की तथा 1862 में कलकत्ता में गाड़ीवानों की हड़ताल हुई। 1862 में पहली बड़ी हड़ताल उस समय हुई जब हावड़ा रेलवे स्टेशन के 1,200 मजदूर हड़ताल पर चले गए। इनकी माँग 8 घंटे के कार्य-दिवस की थी। ध्यान देने की बात है कि यह विद्रोह शिकागो के मई दिवस के विद्रोह से 24 साल पहले हुआ और एक ऐसे उद्योग में हुआ जो 1853 में शुरू ही हुआ था।

টাকার দ্রব্য দেওয়া হইবে।
সম্প্রতি হাবড়ার রেইলওয়ে ষ্টেসনে প্রায় ১২০০ মজুর কর্ম্মত্যাগ করিয়াছে। তাহারা বলে লোকোমোটিব (গাড়ি) ডিপার্টমেন্টের মজুরেরা প্রত্যহ ৮ ঘন্টা কাজ করে। কিন্তু তাহাদিগকে ১০ ঘন্টা পরিশ্রম করিতে হয়। কয়েক দিবসাবধি কার্য্য স্থগিত রহিয়াছে। রেইলওয়ে কোম্পানি মজুরদিগের প্রার্থনা পরিপূর্ণ করুন, নচেৎ লোক পাইবেন না।
পূর্ব্ব বাঙ্গলার রেলওয়ে গাড়ি খুলিবার

8. "सोमप्रकाश" में द्वारकानाथ विद्याभूषण की रेल मजदूरों के विषय में टिप्पणी

इस रेलवे हड़ताल के बाद तमाम हड़तालें हुईं। 1877 में एक बड़ी हड़ताल नागपुर के "एक्सप्रेस मिल्स" में वेतन के सवाल पर हुई। 1882 और 1890 के बीच मद्रास और बंबई प्रेसीडेन्सी में 25 हड़तालें हुईं। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि बंबई में हुईं ज्यादातर हड़तालें भारतीय उद्योगपतियों के वस्त्र उद्योग में हुईं। बंगाल में भी सभी हड़तालें कम वेतन और मजदूरों की छंटनी किए जाने के विरोध में हुई।

7.7.3 विशेषताएँ

इन लोकप्रिय आंदोलनों का सर्वेक्षण करते समय कुछ मुख्य बातों पर ध्यान देना चाहिए जैसे·

1) इससे मजदूर और बुद्धिजीवियों के बीच की दूरी को कम करने में मदद मिली। इस समय के कुछ समाज-सुधार आंदोलनों जैसे ब्रह्म समाज, और दुनिया के अन्य भाग जैसे इंग्लैंड में हो रहे समाज-सुधार आंदोलनों के कारण यहाँ के बुद्धिजीवी मजदूरों के प्रति काफी मानवतावादी हो गए थे। यह परंपरा बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक चलती रही। गाँधी जी की अहमदाबाद मिल मजदूरों तक पहुँचने की इच्छा और अनुसुईया बहन द्वारा इन मजदूरों को पढ़ाने के लिए 1916 में रात्रि स्कूल शुरू करना इसी दिशा में एक प्रयास था।

2) आमतौर से इनका नेतृत्व "सिरदार" करते थे जो इन मजदूरों के इलाके तथा जाति के होते थे तथा इनको नौकरी दिलाते थे। ऐसी परिस्थिति में मजदूरों के हित गौण हो जाते थे क्योंकि यह लड़ाई "सिरदार" और मालिकों के बीच की हो जाती थी। कई अन्य मौकों पर बुद्धिजीवियों ने मजदूरों का नेतृत्व किया। इन सभी परिस्थितियों का मुआयना करने पर ऐसा आभास होता है कि मजदूरों को "बाहरी" नेतृत्व पर निर्भर रहना पड़ता था। यह सही है कि सारे के सारे गाँव के विस्थापित लोग ही मजदूरी कर रहे थे और औपनिवेशिक शासन द्वारा भारतीय मजदूरों के मन-मस्तिष्क पर जमें पुराने और सामंती मूल्यों की रक्षा की जाती थी। बुद्धिजीवी नेता, जो स्वयं पुराने सामंती प्रभाव से बाहर नहीं आ पाए थे, मजदूर संगठनों और उनकी चेतना पर कोई गंभीर प्रभाव डाल पाने में असफल रहे। प्रबल सामंती प्रभाव के कारण महिला और बाल मजदूरों की बदतर स्थिति को भी पूरी तरह नजरअन्दाज किया गया। इन्हीं कारणों से इन लोकप्रिय आंदोलनों में से ज्यादातर तात्कालिक समस्याओं जैसे वेतन, नौकरी से छँटनी, या साप्ताहिक छुट्टी आदि को लेकर ही हुए।

इन सब कमियों के बावजूद हमें मजदूरों की बहादुरी की दाद देनी होगी क्योंकि वे ऐसे समय में संघर्ष कर रहे थे जब कोई संगठित ट्रेड यूनियन उनकी मदद के लिए उपलब्ध नहीं थी।

बोध प्रश्न 4

1 पाँच पंक्तियों में भारत में मजदूर वर्ग के उदय की चर्चा करें।

....
....
....
....
....

2 पाँच पंक्तियों में मजदूरों की समस्याओं का वर्णन करें।

....
....
....
....
....

3 यहाँ कुछ हड़तालों के नाम एवं वर्ष दिए जा रहे हैं उन्हें सही रूप से मिलाएँ

i) 1853	अ) नागपुर एम्प्रेस मिल
ii) 1862	ब) नदी-यातायात कुली
iii) 1877	स) रेल

4 निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन सही (✓) और गलत (x) है।

i) जन-आंदोलन ने मजदूर और बुद्धिजीवियों के बीच की दूरी कम करने में मदद की।
ii) सिरदारों ने कभी मजदूरों के हितों की अवहेलना नहीं की।
iii) महिला और बाल मजदूरों के हितों की रक्षा इस काल में नहीं हो सकी।
iv) गाड़ीवानों की हड़ताल कलकत्ता में (1862) हुई।

7.8 सारांश

औपनिवेशिक नीतियाँ कृषक, आदिवासी और शिल्पकारों के प्रतिकूल थीं। वे अब दोहरे अत्याचार के शिकार हो रहे थे— एक तो औपनिवेशिक सरकार के अत्याचार के और दूसरे जमींदार और सूदखोरों के अत्याचार के। आम तौर पर ऐसे अत्याचारों का विरोध ही जन – आंदोलनों का रूप लेता था। ऐसे जन – आंदोलनों की चर्चा सरकारी दस्तावेजों में डकैती दंगा या विद्रोह के नाम से दर्ज की गयी है। लेकिन वास्तव में ये जनांदोलन भारतीय समाज के शोषक तबकों के खिलाफ प्रतिरोध की अभिव्यक्ति थे। ये जन-आंदोलन समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों में होते रहे। भारतीय समाज की बिभिन्नता के कारण औपनिवेशिक शासक और भारतीय शोषकों द्वारा इन जन- आंदोलनों को कभी जातीय और कभी सांप्रदायिक दंगे का भी नाम दिया गया। मुख्य बात तो यह है कि ये जन आंदोलन धनवानों के खिलाफ निर्धनों का संघर्ष था। वैसे ये जन – आंदोलन असफल अवश्य रहे। अंग्रेजों के खिलाफ माहौल तैयार करने और राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि निर्मित करने में इनकी भूमिका निर्विवाद है।

ब्रिटिश शासन का दूसरा मुख्य-प्रभाव भारत में मजदूर-बर्ग के निर्माण में था। हालाँकि ये मजदूर संगठित नहीं थे फिर भी 19वीं शताब्दी के अंत तक इनकी हड़तालों के बहुत से उदाहरण हमें मिलते हैं। ये हड़तालें बेहतर कार्यस्थिति और अच्छे वेतन के लिए थीं। इनमें से बहुत सी तो भारतीय द्वारा नियंत्रित उद्योगों में हुई। इससे यह साफ हो जाता है कि मजदूरों का शोषण अंग्रेज और भारतीय दोनों उद्योगपतियों द्वारा किया जा रहा था। असल में, इस काल के संघर्षों को श्रमिक बर्ग के बड़े आंदोलनों की पृष्ठभूमि के रूप में देखा जाना चाहिए। जो भी हो, श्रमिक् बर्ग द्वारा किये गये आर्थिक संघर्ष ने राष्ट्रीय आंदोलन में राजनीतिक संघर्ष को मजबूत करने में उल्लेखनीय भूमिका अदा की।

7.9 शब्दावली

पट्टेदार: वह व्यक्ति जिसे, भूस्वामी या जमींदार द्वारा किसी स्थाबर संपत्ति या जमीन के दिया गया हो उपभोग का अधिकार

बिचौलिया: जमींदार और किसान के बीच भूमिकर या लगान आदि बाला व्यक्ति,

काश्तकार: किसान, वह व्यक्ति जिसने जमींदार को लगान देकर उसकी जमीन पर खेती करने का अधिकार प्राप्त किया हो

स्वतःस्फूर्त: अपने आप उत्पन्न। किसी सहायता के बिना उभरना

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 1) 2) ✓ 3) × 4) ✓
2 देखें भाग 7.2

बोध प्रश्न 2

1 i) ब ii) स iii) अ
2 देखें उपभाग 7.4.2
3 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) × v) ×

बोध प्रश्न 3

1 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) × v) ×
2 i) स ii) अ iii) ब
3 देखें भाग 7.6

बोध प्रश्न 4

1 देखें भाग 7.7
2 देखें भाग 7.7 तथा उपभाग 7.7.1
3 i) ब ii) स iii) अ
4 i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓